विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

वार्षिक शुल्क रु. 30/-
आजीवन शुल्क रु. 500/-

बुद्धवर्ष 2558, फाल्गुन पूर्णिमा, 5 मार्च, 2015 वर्ष 44 अंक 9

For Patrika in various languages, visit: http://www.vridhamma.org/Newsletter_Home.aspx

धम्मवाणी

नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं, नत्थि तण्हासमा नदी॥

-- राग के समान अग्नि नहीं है, न द्वेष के समान जकड़न।
मोह के समान फंदा नहीं है, न तृष्णा के समान नदी।

धम्मपदपाळि -२५१. मलवग्गो.

'मोह' शब्द का सही अर्थ

(बसीन, म्यंमा रहते हुए श्री गोयन्काजी ने अपने भाइयों को जो धर्म-पत्र लिखा उसका संक्षिप्त स्वरूप) *बसीन, ७-८-१९६८*

प्रिय शंकर! सीता! राधे! विमला!

धर्म के तत्त्व को समझो!

प्रिय शंकर ने पूछा कि यह 'मोह' क्या है? आज की हिंदी में मोह शब्द का जो अर्थ किया जाता है वह सचमुच बड़ा भ्रामक है और भगवान बुद्ध द्वारा पालि भाषा में उपदेशित 'मोह' शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग हुआ है उससे बहुत दूर पड़ जाता है। इसलिए इस संबंध में भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है। आज जब हम कहते हैं कि अमुक व्यक्ति को रुपये-पैसों से बहुत मोह है, तो यहां मोह का सीधा सादा अर्थ राग है, आसक्ति है। परंतु भगवान ने राग, द्वेष और मोह तीन अलग-अलग बंधन बताये हैं। मोह का अर्थ भी अगर राग ही हो, तो फिर दो ही बंधन कहने चाहिए थे, तीन बंधन कहने का कोई मतलब नहीं था। परंतु भगवान कभी बे-मतलब की बात नहीं करते। भगवान के उपदेशों में ऐसी भूल नहीं देखी जाती।

पालि ग्रंथों के अध्ययन से मोह शब्द का जो अर्थ निकलता है, वह है -- मूढ़ता, मूर्खता, पशुता, मिथ्यादृष्टि। किसी के प्रति आसक्ति होना व लोभ होना राग का बंधन है। परंतु असत्य को सत्य समझना, सार को निस्सार तथा असार को सार समझना -- यही मोह है, यही मूढ़ता है, यही मिथ्या-दृष्टि है। जब तक कोई व्यक्ति अनित्य को नित्य समझता रहेगा, दुःख को सुख समझता रहेगा, अनात्म को आत्म समझता रहेगा, तब तक वह शीलवान और समाधिवान होकर भी, राग और द्वेष के सारे बंधनों से मुक्त हो जाने पर भी, मोह के कड़े बंधनों से आबद्ध ही माना जायगा।

मेरी नजर में दो प्रकार के लोग मोह के बंधन में बँधे होते हैं। एक बहुत निम्न श्रेणी के लोग जिन्हें धर्म के साधारण स्वरूप का भी ज्ञान नहीं है। वे मोह की लोहे जैसी जंजीरों से जकड़े होते हैं। दूसरे ऐसे लोग जिन्हें एक सीमा तक धर्म का ज्ञान होता है परंतु वास्तविक परमार्थ-धर्म के क्षेत्र में कोरे होते हैं। उनके मोह के बंधन लोहे की जंजीरों जैसे नहीं, बल्कि रेशम और नायलोन के धागों की तरह हैं, जो देखने में बड़े प्रिय लगते हैं परंतु हैं इतने कड़े और मजबूत कि इनसे सहज छुटकारा नहीं मिल सकता। क्योंकि बंदी इस बंधन को बंधन ही नहीं मानता, शृंगार मानता है और उसी को धर्म मानता हुआ प्रसन्न रहता है, संतुष्ट रहता है। इसलिए ये बंधन टूटने अधिक कठिन हैं। लोक में कभी कोई ''प्रत्येक बुद्ध'' उत्पन्न होता है तो वह अपने ऐसे बंधन स्वयं तोड़ पाता है। अथवा जब कभी कोई सम्यक सम्बुद्ध उत्पन्न होता है, तो वह न केवल अपने बंधन ही तोड़ता है, बल्कि असंख्य प्राणियों को अपने-अपने बंधन काट लेने का मार्ग प्रदर्शित करता है। जब तक उसका बताया हुआ मार्ग धर्म-शासन के रूप में जीवित रहता है, तब तक लोगों के बंधन कटने का मार्ग भी खुला रहता है।

यहां मैं बिस्तार से बता दूं कि मोह के दो तरह के बंधन कौन से हैं? वैसे दोनों ही अवस्था में मनुष्य अनित्य को नित्य समझता है, दुःख को सुख समझता है, और अनात्म को आत्म समझता है।

पहले निम्न कोटि के मोह-बंधन से बँधे व्यक्ति की दशा देखें:-

ऐसा व्यक्ति मोह के यानी मूढ़ता के आवरण में आबद्ध होकर इस बात को भूल जाता है कि वह जनमा है तो एक दिन मरेगा भी, उसका जीवन अनित्य है, उसने जो धन-संपदा एकत्रित की है, वह भी अनित्य है, एक दिन समाप्त हो जाने वाली है, सदैव रहने वाली नहीं है। मोह के बंधनों में बँधा हुआ वह व्यक्ति इस अनित्य अवस्था को नित्य मान कर चलता है। इसी प्रकार काम-भोग से उत्पन्न होने वाले दुःखों को वह सुख मानता है। वस्तुतः इंद्रियजन्य सभी विषयों के सेवन में अंततः दुःख ही समाया हुआ है परंतु इन दुःखों को वह सुख मानता है। सांसारिक दुःखों को वह दुःख नहीं समझता बल्कि सुख मानता हुआ उनके पीछे दौड़ता है। तीसरे देहात्म बुद्धि के वशीभूत होकर वह इस भौतिक शरीर को ही आत्मा मानता हुआ इतने गहरे अहंभाव में जकड़ा रहता है कि उसके अंतर का ''मैं और मेरे'' का आत्मभाव निकल ही नहीं पाता। बात-बात में ''यह मेरा है, मैं ऐसा हूं, मेरा सम्मान हुआ, मेरा अपमान हुआ आदि।'' इस प्रकार थोथे आत्मवादी अहंभाव में जकड़ा रहता है। अनात्म को आत्म मानता हुआ मोह के बंधन से आबद्ध रहता है। यह हुआ निम्न कोटि का मूढ़ प्राणी, जो मोह के मोटे-मोटे बंधनों से जकड़ा रहता है। ऐसे व्यक्ति के तथाकथित मोह के बंधन जब कभी लोक में कोई सामान्य महापुरुष उत्पन्न होता है, तो उसके सत्प्रयत्नों से, सदुपदेशों से टूटते हैं। कभी-कभी दुनिया की ठोकरें खा कर ऐसा व्यक्ति स्वयं अपने ज्ञान से भी मोह के इन मोटे बंधनों को तोड़ता है।

अब हम मोह के ऊंचे बंधनों को देखें।

ये जितने ऊंचे हैं उतने ही सूक्ष्म हैं। मोह के ये सूक्ष्म बंधन आसानी से नहीं टूट सकते। क्योंकि ये देखने में बड़े प्रिय लगते हैं, सुंदर लगते हैं, इसलिए अधिक मोहक हैं और अधिक दृढ़ हैं। ऐसे दृढ़ बंधनों में बँधा हुआ व्यक्ति इस बात को नहीं समझ सकता कि 'नाम' और 'रूप' के संयोजन से बना हुआ यह प्राणी-सत्त्व प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है, क्षण-क्षण भंग हो रहा है। स्थूल से स्थूल पशुओं से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्रह्मलोक तक के सभी प्राणी अनित्य हैं, नाशवान हैं, मरणधर्मा हैं। वह मोह-मूढ़ता के अंधकारवश ऐसी

मिथ्या मान्यता में उलझा रहता है कि अमुक लोक अमर है, अमुक प्राणी अमर है.. आदि। इस प्रकार समस्त जड़-चेतन प्रकृति और प्राणी समूह, जो वस्तुतः भिन्न-भिन्न कारणों से उत्पन्न होने वाले हैं और नष्ट होने वाले हैं, और जो वस्तुतः परिवर्तनशील हैं, उनमें एक नित्य, शाश्वत, ध्रुव सत्ता का आरोपण करना ही मोह है, मूढ़ता है, छलना है, प्रवंचना है, माया है, मिथ्या दर्शन है।

इसी प्रकार मोह का एक और रेशमी बंधन दुःख को सुख मानना है। ऐन्द्रिय आनंद को परमानंद और ब्रह्मानंद मान लेना है। जिस प्रकार यह मोहग्रस्त प्राणी अपनी मिथ्यादृष्टि के कारण शरीर के अंग-अंग में भासमान अनित्य चैतन्य को नित्य और शाश्वत मान लेता है, उसी प्रकार ध्यानजन्य सुख-आनंद को भी शाश्वत परमानंद मान बैठता है। ऐसा व्यक्ति किसी मंत्र के बल पर अथवा अन्य किसी आलंबन के बल पर चित्त एकाग्र करने का अभ्यास करता है और विचार तथा वितर्क से परिपूर्ण प्रथम ध्यान की अवस्था से जरा ऊंचा उठता है और दूसरे ध्यान की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते उसके विचार शांत हो जाते हैं। फिर ध्यान की तीसरी अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते उसके वितर्क भी शांत हो जाते हैं। अब वह सविचार, सवितर्क और सविकल्प समाधि की अवस्था से ऊपर उठता हुआ निर्विचार, निर्वितर्क और निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करता है यानी तृतीय ध्यान समापत्ति में प्रतिष्ठित होता है। इस तृतीय ध्यान तक पहुँचते हुए सारे रास्ते उसके अंतर में सुख और प्रीति की यानी, आनंद की लहरे उठती हैं और तीसरे ध्यान की अवस्था तक पहुँच कर तो यह आनंद अवस्था अत्यंत तीव्र हो जाती है। चित्त की एकाग्रता भी स्थिर, अचंचल हो जाती है। केवल प्रीति-सुख ही प्रीति-सुख का अनुभव होता है। आनंद ही आनंद का अनुभव होता है। यह सच है कि तृतीय ध्यानजन्य इस निर्विकल्प अवस्था में चित्त इस कदर अकंप और अचंचल हो जाता है कि बाकी पांचों इंद्रियां जैसे आंख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा लगभग काम करना बंद कर देती हैं। परंतु फिर भी चित्तरूपी छठी इंद्रिय कायम रहती है और इस चैतसिक आनंद की अनुभूति करती रहती है। इसलिए यह आनंद भी ऐन्द्रिय आनंद ही है, इंद्रियातीत नहीं और परिणामतः क्षण-क्षण परिवर्तनशील है, नाशवान है। इसलिए इसके गर्भ में भी दुःख का बीज समाया हुआ है। ऐसे चैतसिक, ऐन्द्रिय, अनित्य आनंद को अतीन्द्रिय आनंद मान कर जो व्यक्ति इसे ही अमर तत्त्व समझ लेता है, वह मोह के रेशमी किंतु दृढ़ धागों से बँधा हुआ ही है।

इस निर्विकल्प अवस्था को पहुँचा हुआ योगी ऐसे मिथ्या मोह में फँस जाय, यह तो किसी प्रकार समझ में आ जाने वाली बात है, परंतु अधिकांश साधक तो सविचार, सविकल्प, सालंब ध्यान की प्रथम व द्वितीय अवस्था में ही जिस यत्किंचित प्रीति-सुख का अनुभव करते हैं, उसी को नित्य, ध्रुव, शाश्वत, परमानंद आदि मान कर भ्रमित हुए फिरते हैं। वे नहीं जानते कि प्रतिक्षण भटकता हुआ मन, वायु वेग से प्रकंपित दीप-शिखा के सदृश अस्थिर मन, जैसे ही किसी भी प्रकार की ध्यान साधना द्वारा एकाग्र होने लगता है, वैसे ही उस हारे-थके मन को विश्रांति मिलने के कारण उसे सुख का अनुभव होता है, शरीर का रोम-रोम पुलकित हो उठता है। और जब ध्यान अधिक एकाग्र हुआ तो आते-जाते हुए सांस पर मन टिक जाने पर ही सुख मालूम होने लगता है, आनंद का झरना झरने लगता है। फिर जैसे ही यह टिका हुआ चित्त संवेदनाओं का अवलोकन करते-करते सारे शरीर में पुलकन से, रोमांच से चेतनाशील हो उठता है तब साधक इसी को अमृत रस मान लेता है, अमर तत्त्व मान लेता है। इस लोकीय आनंद को लोकोत्तर आनंद मान बैठता है। यही मोह का दूसरा रेशमी बंधन है।

इसी तरह मोह के तीसरे रेशमी बंधन में बँधा हुआ व्यक्ति इस आत्मदृष्टि में उलझा रहता है कि मैं तो अमर ही हूं। ऐसा व्यक्ति ऊपर बतायी गयी तृतीय ध्यान अवस्था को ही आत्म-साक्षात्कार मान कर, परमानंद, आत्मानंद आदि मान कर, उसे ही जीवन का अंतिम लक्ष्य मान लेता है, उसी को परम मुक्त अवस्था मान लेता है। वस्तुतः वह जिस स्थिति का अनुभव करता है, वह विज्ञान, संज्ञा, वेदना और संस्कार रूपी चित्त की ही एक शांत अवस्था है। इससे अधिक और कुछ नहीं।

ऐसा व्यक्ति राग और द्वेष का नितांत निराकरण कर लेने पर भी, मोह मूढ़ता के पहले बताये हुए मोटे-मोटे बंधनों को तोड़ लेने पर भी, मोह के इस तीसरे रेशमी किंतु दृढ़ बंधन में बँधा होने के कारण कभी भी मुक्त अवस्था प्राप्त नहीं कर सकता और संसार चक्र में उलझा ही रहता है। ऐसे लाखों-करोड़ों में से कोई एक व्यक्ति अपने ही पराक्रम से अनित्य, दुःख और अनात्म स्थितियों को अपने सही रूप में देख-समझ कर 'प्रत्येक बुद्ध' हो निर्वाण रूपी मुक्ति प्राप्त करता है अथवा लोक में सम्यक सम्बुद्ध के उत्पन्न होने पर बुद्ध शासन के संसर्ग में आकर अरहत्व उपलब्ध कर निर्वाण पद लाभी होता है। लेकिन बुद्ध शासन के कायम रहते हुए भी 'सभी लोग' उसके संपर्क में आकर राग, द्वेष के अतिरिक्त इस मोह के बंधन को भी तोड़ सकें, ऐसा संभव नहीं होता। जिन लोगों की पूर्व जन्मों की पारमी प्रबल होती है, वे ही बुद्ध शासन में अमरत्व पान कर सकते हैं। बाकी लोग तो अन्य मार्गों के जटिल बंधनों में बँधे हुए चक्करग्रस्त ही रहते हैं। इसीलिए भगवान का मार्ग सबसे प्रणीत है क्योंकि वह अन्य मार्गों की तरह केवल राग और द्वेष को ही दूर नहीं करता बल्कि मोह को भी जड़ से उखाड़ फेंकता है।

'भव' का तात्पर्य

प्रिय शंकर ने एक और प्रश्न पूछा कि तृष्णा के बाद यह 'उपादान' और यह 'भव' क्या होता है?

आज की हिंदी में भव 'संसार' को कहते हैं। जैसे भव-सागर माने संसार-सागर। यह अर्थ प्राचीन पालि के अर्थ से बहुत दूर नहीं है फिर भी 'भव' यहां कर्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसे समझें :--

प्रतीत्य-समुत्पाद की एक-एक कड़ी का निरीक्षण करते हुए हम देखते हैं कि षडायतन यानी छः इंद्रियों द्वारा अपने-अपने विषयों से 'फस्स' यानी स्पर्श होने पर वेदना यानी सुखद या दुःखद संवेदना उत्पन्न होती है। यहां तक कोई कर्म नहीं हुआ। अधिक से अधिक किसी पूर्व कर्म का फल पक कर तैयार हुआ और उसके कारण ऐसी परिस्थितियों का बनाव बना और छहों इंद्रियों के सम्मुख ऐसे विषय उत्पन्न हुए कि उनके संसर्ग से जिस संवेदना की अनुभूति हुई वह अच्छे कर्म की उपज होने पर सुख-वेदना के रूप में प्रकट हुई और बुरे कर्म की उपज होने पर दुःख-वेदना के रूप में प्रकट हुई। अब इस वेदना के तुरंत बाद जो तृष्णा जगी, वह सुख-वेदना हो तो उसे चाहने लगा। उस तृष्णा के उत्पन्न होते ही नये कर्मों का चक्र आरंभ हुआ। वही तृष्णा तीव्रता को प्राप्त हुई तो उपादान हुआ, यानी, चित्त में गहरी लालसा उत्पन्न हुई, जिसे अंग्रेजी में 'Craving' कहते हैं। चित्त की ऐसी अवस्था पर कर्म का संपादन होना अनिवार्य हो जाता है-- चैतसिक कर्म, वाणी के कर्म, और काया के कर्म भी। इन कर्मों को ही भव अथवा कर्म-भव कहते हैं और संक्षेप में केवल भव भी कह देते हैं।

भव क्यों कहते हैं? क्योंकि तृष्णा और उपादान से उत्पन्न हुआ यह कर्म ही हमारे लिए एक नया भव तैयार करता है, एक ऐसा संस्कार जो जीवन-मरण का चक्र तैयार करता है। मैं इस समय जो भी हूं, मेरे अपने कर्म का ही विपाक फल हूं। इसलिए मेरा कर्म ही मेरा भव है। अतः कर्म को भव का पर्यायवाची कहना गलत नहीं है। हर प्राणी अपने-अपने कर्म के अनुसार अपने-अपने मन के बंधन में उलझा हुआ है। सचमुच, यह भव-सागर अत्यंत विस्तृत है, अत्यंत गहन है। इसका कहीं कोई ओर-छोर नहीं दीखता। इसका कहीं

तल-स्पर्श नहीं किया जा सकता। हर प्राणी का भव उसके कर्मानुसार, उसकी अपनी कर्म-सीमाओं में ही आबद्ध है। पाखाने के मल में कुलबुलाता हुआ एक कीड़ा उसी मैले में जनमता है, उसी में इधर-उधर रेंग कर कुछ समय पश्चात मर जाता है। उसके लिए ये अनंत कोटि सूरज, चांद, सितारे, यह पृथ्वी, यह आसमान कोई मायने नहीं रखते। उसका क्षुद्र भव उस पाखाने की छोटी-सी गंदगी तक ही सीमित है। इसी प्रकार हरेक प्राणी का भव उसके अपने कर्मों के अनुसार सीमित ही तो है।

हम मनुष्य हैं, प्राणियों में अत्यंत उच्च कोटि के प्राणी, लेकिन हमारा भव भी तो आखिर सीमित ही है। ये अनंत कोटि सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, नीहारिकाएं हमारे किस काम की हैं? केवल उनकी मानसिक कल्पना भर भले कर लें। लेकिन फिर भी प्रत्येक प्राणी इस असीम भवसागर में जिसका कहीं ओर है न छोर, अपने कर्मों के कारण कहां से कहां पहुँचते रहता है और जन्म धारण करते रहता है। हमारे कर्मों के अनुरूप बना हुआ यह भव हमारे अगले जन्म का कारण बनता है और जन्म होता है तो बुढ़ापा होता है, बीमारी होती है, मृत्यु होती है और नाना प्रकार के दुःख-संताप उठ खड़े होते हैं। यही प्रतीत्य-समुत्पाद है। 'वेदना' के बाद उठने वाली तृष्णा को रोकते ही उपादान अपने आप रुक जाता है और उपादान रुकते ही कर्मभव रुक जाता है। और जिसके लिए कोई भव नहीं उसका कर्म जन्म देने वाला कर्म नहीं होता। यानी, जिसके चित्त से तृष्णा और अविद्या का समूल नाश हो गया, उसके कर्म अरहंत के कर्म हैं, जो संस्कारहीन हैं और फलहीन हैं, अच्छे या बुरे फल देने वाले नहीं हैं। इसीलिए भव उत्पन्न करने वाले नहीं हैं। उसके लिए कोई संसार नहीं है, कोई जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु, दुःख, संताप, दौर्मनस्य और रोना-पीटना नहीं है, यही निर्वाण की अवस्था है।

इसी बात की गहराई को समझ कर सद्धर्म को समझने वाला एक व्यक्ति कहता है कि इस अनंत सृष्टि का रचयिता और संचालन कर्त्ता कोई एक देव, ब्रह्म या ईश्वर नहीं है और यदि कहीं कोई हो भी तो हमारा उससे कोई लेन-देन नहीं है। उसके होने न होने से हमारा कोई हानि-लाभ नहीं है क्योंकि हम उसके कारण नहीं, बल्कि अपने कर्म-भव के कारण दुःख-सुख के भागी होते हैं। अपने कर्मों के कारण ही प्राणी स्वयं अपना भव निर्माण करता है और अपने कर्मों का निरोध करके अपने भव को निरुद्ध कर लेता है। इसलिए हम स्वयं ही अपने आपको बंधनमुक्त करने वाले हैं। कोई बेचारा सृष्टि का रचयिता ब्रह्म अथवा तारक ब्रह्म इसमें क्या करेगा? यदि कोई अपने आप को तारक कहने का दम्भ रखे तो वह सचमुच मिथ्यादृष्टि से ही आबद्ध है। कोई महापुरुष अधिक से अधिक प्राणियों का मार्ग-निर्देशक मात्र हो सकता है। वह सही मार्ग प्रकाशित कर दे, इतनी ही अनुकंपा कर सकता है और इतने अर्थों में ही तारक कहा जा सकता है, इससे अधिक नहीं।

कोई मुझे रंगून से मांडले जाने तक का मार्ग बता दे, समझा दे और मुझे अच्छी तरह समझ में भी आ जाय, परंतु जब तक मैं स्वयं उस मार्ग पर एक कदम चलूं नहीं, तब तक मांडले मुझसे उतना ही दूर है, जितना कि पहले था। उस तारक के संपर्क में आकर भी मैं रंगून से एक कदम आगे नहीं बढ़ सकता। तो सही माने में अपना तारक तो मैं स्वयं हुआ न। मार्ग-निर्देशक कोई दूसरा अवश्य हो सकता है, पर तारक नहीं। ऐसा है यह भव, ऐसी है इस भव की उत्पत्ति और ऐसा है इस भव का निरोध। जिसने इस भव-निरोध के रास्ते को भली-भांति समझ लिया और स्वयं उस पर भली-भांति चल कर सचमुच अपने भव का निरोध कर लिया, वही वस्तुतः मुक्त है, अन्य सभी भ्रमग्रस्त हैं।

अतः आओ, इस मोह-बंधन तथा भव-बंधन से छुटकारा पाने के लिए शील, समाधि और प्रज्ञा का नियमित रूप से अभ्यास करते हुए धर्म में पुष्ट हों और सभी बंधनों से मुक्ति प्राप्त कर लें। इसी में हम सब का मंगल-कल्याण समाया हुआ है।

साशिष,
सत्यनारायण गोयन्का

दीपावली नव-वर्ष १९९५ के प्रश्नोत्तर (समाप्त)

प्रश्न – विपश्यना करने के बाद मन और सबल हो जाता है। परंतु मन को काबू नहीं रख पाये और कभी-कभी अपनी हत्या तक के विचार आते हैं। तो क्या करूं?

उत्तर – क्या मजबूत हुआ रे भाई! कमजोर हो गया न तुम्हारा मन। हत्या की ओर जाता है इसका मतलब कितना दुर्बल है! अरे, मैं तो जी नहीं सकता, जी करके क्या करूंगा? सारे संसार में ऐसा है, मेरे मन की बात नहीं होती, तो मरना चाहता है न! तो मन बड़ा कमजोर है, अभी विपश्यना ठीक से नहीं समझी। विपश्यना करने वाला कभी आत्महत्या नहीं करेगा। इस बात को खूब समझेगा कि आत्महत्या का मतलब हुआ, मृत्यु के समय हमारा चित्त बड़ा दुःखी है, तभी आत्महत्या करता है न। मृत्यु के समय यदि चित्त बहुत दुःखी है तो इस जीवन का अंतिम क्षण ही अगले जीवन का प्रथम क्षण है। वह दुःख में ही जनम लेगा और दुःख में ही उसका जीवन बढ़ता चला जायगा। विपश्यी साधक कभी आत्महत्या नहीं करेगा।

खूब सुखी हो, खूब मंगल हो, खूब कल्याण हो!

कल्याणमित्र,
सत्यनारायण गोयन्का

मित्र उपक्रम

मित्र उपक्रम (बच्चों को आनापान तथा स्कूल अध्यापकों को विपश्यना शिविर करने का अभियान) जनवरी २०१२ में आरंभ हुआ। अप्रेल से जून तक २,८०९ अध्यापकों ने १० दिन का शिविर पूरा किया। उसके बाद अनेक स्थानों पर शिविर और ट्रेनिंग के कार्यक्रम चलते रहे। २०१२-२०१३ में लगभग १०,००० स्कूल-अध्यापकों ने ये कार्यक्रम पूरे किये थे और लाखों विद्यार्थियों ने आनापान की विद्या सीखी।

जुलाई २०१४ में कमिश्नरी स्तर पर ७० मिनट के आनापान कार्यक्रम पहले सभी शिक्षा अधिकारियों को दिये गये। उसके बाद तालुका स्तर पर उनके अन्य अधिकारियों और स्कूल के प्राध्यापकों को, इसकी सीडी तथा अन्य सामग्री दी गयी ताकि अधिक से अधिक बच्चों को इसका लाभ प्राप्त हो सके। यह अभियान जोरों से आगे बढ़ रहा है और सफलता भी मिल रही है। अब तक विदर्भ, नाशिक, मराठवाडा, सांगली, कोल्हापुर क्षेत्रों के लगभग सभी ४०,००० स्कूलों में लाखों विद्यार्थी आनापान से लाभान्वित हुए हैं और इनके ठोस परिणाम सामने आये हैं। इस कार्यक्रम को और तेजी से आगे बढ़ाने के लिए बहुत बड़ी संख्या में धर्मसेवकों की आवश्यकता है। **अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें**-- द्वारा- नूतन रियालिटीज (इं) लि., १३-१, सूर्योदय इस्टेट, १३६, ताड़देव रोड, बच्चू मोटर्स शोरूम के पास, मुंबई-४०००३४. फोन- ०२२-२३५१-६१९६, ईमेल- mitraupakram@gmail.com

---

धम्म उत्कल विपश्यना साधना केन्द्र

खरियार रोड़ (उड़ीसा) में पगोडा का निर्माण कार्य आरंभ हो गया है। उसमें ४६ सेल (**8+8+30**) निर्मित होंगे। केन्द्र में हर माह एक १० दिवसीय शिविर का आयोजन हो रहा है। ३० साधकों के लिए नये निवास बनाने का लक्ष्य है। पुण्य-पारमी बढ़ाने के इच्छुक साधक-साधिकाएं-- 'उत्कल विपश्यना साधना ट्रस्ट', खरियार रोड के नाम से केंद्र के पते पर संपर्क करें।

Registered No. NSK/235/2015-2017

WPP Postal License No. AR/Techno/WPP-05/2015-2017

भगवान बुद्ध के अस्थि-अवशेषों के सचित्र सूचना-कक्ष का उद्घाटन करती हुई माताजी।

अस्थि-अवशेषों का सचित्र सूचना-कक्ष, पगोडा परिसर, गोराई, मुंबई-९१

सूचना-कक्ष का निरीक्षण करते हुए विवरण सुनती हुई- माताजी।

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

१. श्री बाबू कांबले, नाशिक
२. श्री सुदर्शन देसावली, हैदराबाद
३. श्री लक्ष्मीनारायण अकुला, हैदराबाद
४. श्रीमती सुषमा कर, भुबनेश्वर
५. श्रीमती कुमकुम रावत, कोलकाता
६. श्रीमती जयश्री सोलंकी, दुर्ग
७. श्रीमती सिद्दम्मा पोथुरु, सिकंदराबाद

बालशिविर शिक्षक

१. कु. रोहिणी जोशी, पुणे
२. कु. नेहल शाह, पुणे
३. कु. रोहिणी रंगारी, पुणे
४. श्री प्रशान्त चौधरी, पुणे
५ श्रीमती रीना सिंह, पटना
६. श्री विद्यानंद प्रसाद, मुजफ्फरपुर
७. कु. ऊषा दास, लखनऊ
८. श्री अजय प्रकाश गौतम, गोरखपुर
९. श्रीमती अनिता गौतम, गोरखपुर
१०. श्री चंद्रप्रकाश, गोरखपुर
११. श्री प्रेमदत्त मेधंकर, बस्ती
१२. श्री मनीष पारेख, मुंबई
१३. श्री भूपेन्द्र पटेल, मुंबई
14. Mrs. Ann Vu Dinh France.

आगामी बुद्ध पूर्णिमा के शुभ अवसर पर एक-दिवसीय महाशिविर

4 मई 2015 को 'ग्लोबल विपश्यना पगोडा' में पूज्य माताजी के सान्निध्य में एक दिवसीय महाशिविर होगा। शिविर-समयः प्रातः **11** बजे से अपराह्न **4** बजे तक. 3 बजे के प्रवचन में बिना साधना किये लोग भी बैठ सकते हैं। बुकिंग के लिए कृपया निम्न फोन नंबरों या ईमेल से शीघ्र संपर्क करें। कृपया बिना बुकिंग कराये न आयें। आकर **समग्गानं तपोसुखो**- सामूहिक तप-सुख का लाभ उठाएं। **संपर्कः** 022-28451170 022-337475-01/43/44- Extn. 9, **(फोन बुकिंग : 11** से **5** बजे तक, प्रतिदिन) **Online Regn.: www.oneday.globalpagoda.org**

दोहे धर्म के

चित्त-मैल त्यागे नहीं, करे ईश की आश।
यही मोह, यह मूढ़ता, यह बंधन, यह पाश॥

कदम-कदम है कल्पना, पग-पग बुद्धि विलास।
घिरा अँधेरा मोह का, दिखे न सत्य प्रकाश॥

राग द्वेष की मोह की, भरी चित्त में खान।
मैत्री करुणा दूर है, दूर मोक्ष निर्वाण॥

मैल मैल सब कोइ कहे, मैल न समझे कोय।
राग द्वेष और मोह ही, मैल चित्त का होय॥

जब तक जाग्रत ना हुआ, प्रज्ञा ज्ञान विवेक।
तब तक मोहाछन्न है, सत्य सके ना देख॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा०) लिमिटेड
८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई- 400 018
फोन: 2493 8893, फैक्स: 2493 6166
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

गुरुवर री महती क्रिपा, पायो विद्या दान।
मिटी काळिमा मोह री, जाग्यो अंतरग्यान॥

पुन्य जगै तो धरम स्यूं, होवै मंगळ मेळ।
राग द्वेस री, मोह री, कट ज्यावै बिस-बेल॥

नसो छा रह्यो मोह रो, सोयो नींद अभाग।
डंको बाज्यो धरम रो, जाग, जाग रै! जाग!!

राग द्वेस री, मोह री, मन ब्यापी दुरगंध।
कुण बिरम्हा जी तारसी? चित्त सोध मतिमंद॥

राग जिसो ना रोग है, द्वेस जिसो ना दोस।
मोह जिसी ना मूढता, धरम जिसो ना होस॥

मोरया ट्रेडिंग कंपनी
सर्वो स्टॉकिस्ट - इंडियन ऑईल, ७४, सुरेशदादा जैन शॉपिंग कॉम्प्लेक्स, एन.एच.६, अजिंठा चौक, जलगांव - ४२५ ००३, फोन. नं. ०२५७-२२१०३७२, २२१२८७७ मोबा.०९४२३१८७३०१, Email: morolium_jal@yahoo.co.in
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादकः राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-422 403, दूरभाष : (02553) 244086, 244076.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, 69- बी रोड, सातपुर, नाशिक-422 007. **बुद्धवर्ष 2558, फाल्गुन पूर्णिमा, 5 मार्च, 2015**

वार्षिक शुल्क रु. **30/-,** US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. **500/-,** US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71. Registered No. NSK/235/2015-2017**

WPP Postal Licence No. AR/Techno/WPP-05/2015-2017
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422 403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-

विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - 422 403
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (02553) 244076, 244086, 243712,
243238. **फैक्स :** (02553) 244176
Email: info@giri.dhamma.org
Website: www.vridhamma.org